समकालीन हिन्दी आलोचना में डॉ० शेर सिंह बिष्ट का योगदान: एक विश्लेषण

भवान सिंह*

सारांश

समकालीन हिन्दी आलोचना का तात्पर्य है कि जो वर्तमान में लिखी जा रही कृतियों की नयी दृष्टि से, सन्दर्भों में, नये मानकों के आधार पर विश्लेषण एवं मूल्यांकन करती है। इस तरह की समीक्षाएँ नवलेखन के फलस्वरूप सामने आयी हैं। वृहत् हिन्दी कोश के अनुसार समकालीन का अर्थ है–''एक समय में रहने या होने वाला।''[1] अर्थात एक समय में घटित होने वाली। समकालीन हिन्दी आलोचना समाज और सौन्दर्य की नवीन धारणाओं का स्वागत करती है व उसका समर्थन करती है। समकालीन आलोचना अपनी एक अलग पहचान रखती है एवं आलोचना के क्षेत्र में दृष्टि की व्यापकता से मांग हमेशा ही रही है। आलोचना के दूसरे अनुशासनों के निकट ले जाने की मांग भी उन्हीं क्षेत्रों में विशेष रूप से की गयी है।

मुख्य शब्द– समीक्षक, काव्यकृति, तार्किक, मूल्यांकन, अन्तर्बाह्म, प्रतिबिम्बात्मक, रहस्यवाद।

प्रस्तावना

नवलेखनों के सम्बद्ध समस्याओं पर वर्तमान में नये आलोचकों ने अपनी दृष्टि से विचार प्रस्तुत किये हैं। इस सम्बन्ध में डॉ0 रामदरश मिश्र लिखते हैं– ''आज की समीक्षा में...स.ही. वात्स्यायन, देवराज, मुक्तिबोध, नामवर सिंह, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही आदि हैं। जो समय–समय पर अपने ढंग से नवलेखन सम्बन्धित प्रश्नों को समझाने का प्रयास कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे समीक्षक हैं, जो सिद्धान्त स्थापन के फेर में न पड़कर कृतियों के नये मूल्यों और छवियों के उद्घाटन में व्यस्त हैं। इनमें अधिकांश सर्जक हैं, यानि पेशेवर समीक्षक नहीं हैं।''[2] हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकारों पर अपने अनुशीलता को लिखित रूप में दर्ज करते हुए अचानक ही अपनी समकालीन महत्वपूर्ण रचनाकारों के प्रति जागरूक होकर उनका मूल्यांकन प्रस्तुत करना डॉ0 शेर सिंह बिष्ट को समकालीन आलोचना के महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में चिन्हित करता है। साहित्य और समालोचना एवं समीक्षा की कसौटी नामक पुस्तकों ने आलोचना जगत में गम्भीर हस्तक्षेप प्रस्तुत किया है, क्योंकि सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ0 नामवर सिंह तथा डॉ0 सुधाकर सिंह ने समुचित मूल्यांकन पर इसके प्रकाशन की संस्तुति प्रदान की है।[3]

डॉ0 शेर सिंह बिष्ट का आलोचना के क्षेत्र में मौलिक योगदान है। उन्होंने झाँसी की रानी में ऐतिहासिक पात्र के माध्यम से समकालीन जीवन के विविध मानवीय सन्दर्भों का विवेचन एवं विश्लेषण किया है। निःसन्देह राष्ट्रीय भावना से प्रेरित काव्यकृति में समाहित विविध सांस्कृतिक संदर्भों की समीक्षा की है। डॉ0 बिष्ट एक संतुलित वैचारिकता से सम्पन्न आलोचक हैं। उनकी आलोचना पद्धति पाठक को उपदेश–आदेश नहीं देती बल्कि बोध कराती है और शंकालु के बजाय जिज्ञासु बनाती है। उनकी आलोचना पद्धति मध्य मार्ग का अनुसरण करती है। उनकी आलोचना यथार्थ मात्र पर आधारित नहीं है बल्कि सामाजिक सरोकारों पर भी आधारित है। उनकी आलोचना परम्परागत आलोचक विषयों पर नहीं बल्कि आधुनिक विमर्शों और बहसों पर भी आधारित है। आलोचना के मानक–निर्धारण पर अपनी राय व्यक्त करते हुये डॉ0 शेर सिंह बिष्ट कहते हैं कि मौलिकता और नवीनता के नामों पर अपने अलग–अलग चूल्हे से बेहतर है कि जिन–जिन आचार्यों, समीक्षकों तथा आलोचकों ने समय–समय पर साहित्य आलोचना विषयक जो–जो तत्व खोज निकाले हैं उनको अपनी गुणवत्ता के आधार पर यथावत अथवा संक्षेपित संशोधनों के साथ स्वीकार कर लिया जाय।

डॉ0 शेर सिंह बिष्ट ने भारतीय काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए उनकी सीमाओं को रेखांकित किया है। उन्होंने भारतीय काव्य शास्त्र के प्रमुख सिद्धान्तों रस सम्प्रदाय का सैद्धान्तिक विवेचना करते हुए व्यावहारिक पक्ष का भी तार्किक मूल्यांकन किया है। उनका रस सिद्धान्त विषयक निरूपण तथा उसकी सीमाओं का मूल्यांकन संक्षेप में इस प्रकार है, वे लिखते हैं– ''काव्यानंद का ही दूसरा नाम 'रस' है।'' इस प्रकार आलोचना के प्रारम्भिक दौर में 'रस' ही काव्य का प्रमुख मूल्य या मानदण्ड बन गया अर्थात् जिस रचना को पढ़ने अथवा सुनने से आनन्द की प्राप्ति होती है वहीं साहित्यिक रचना मानी जा सकती है। इससे इतर यदि कोई कविता या कृति प्रकाश में आती है तो वह कोरा शब्दजाल या अनर्गल प्रलाप ही कहलाएगा। 'रस' नामक यह मूल्य एक प्रकार से किसी रचना को पढ़ने अथवा सुनने से उत्पन्न प्रभावात्मक प्रतिक्रिया पर आधारित था।[4]

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

रचना और आलोचना के क्षेत्र में वे लिखते हैं–''निराला की 'राम की शक्तिपूजा', पन्त की 'परिवर्तन' और मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' कविताएं अलग–अलग भावभूमि पर रचित श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता। तीनों अपनी विषय–वस्तु के कारण श्रेष्ठ नहीं है। उनकी श्रेष्ठता का मुख्य आधार अपने विषय का प्रामाणिक रूप में प्रस्तुतीकरण है। उन्होंने ध्वनि सिद्धान्त का भी काव्य समीक्षा के सापेक्ष मौलिक चिन्तन एवं मूल्यांकन किया है। आनन्द बर्धन के ध्वनि सिद्धान्तों के सन्दर्भ में वे लिखते हैं–उनकी स्पष्ट मान्यता है कि साहित्य समाज के पीछे चलता है समाज के अनुसार ही उसकी दिशा तय होती है।

प्राचीन काल से अभी तक यह मान्यता चली आ रही है कि साहित्य समाज का दर्पण है। डॉ0 शेर सिंह बिष्ट ने परंपरा से चली आ रही इस उक्ति का हिन्दी साहित्य के इतिहास के सापेक्ष मूल्यांकन करते हुए तार्किक दृष्टि से इसका खण्डन किया है। वे लिखते हैं–संस्कृति का प्रमुख अंग समाज है। यह कहा जाता रहा है कि वास्तव में समाज का ही साहित्य में चित्रण होता है। इसलिए यह उक्ति चल पड़ी है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।'[5] वास्तव में उक्ति पूरी तरह सत्य नहीं है। 'दर्पण' का तात्पर्य तो यह है कि उसके सामने जैसा है, ठीक वैसा ही प्रतिबिम्बित करना। साहित्य ऐसा दर्पण नहीं है, साहित्य एक सीमा तक समाज से प्रभावित होता है और समाज को भी प्रभावित करता है। समाज के अलावा साहित्य को प्रभावित करने वाली चीजें बहुत सी होती हैं जैसे साहित्यक रूढ़ियाँ तथा परम्पराएँ, धार्मिक एवं दार्शनिक परम्पराएँ एवं तत्कालीन समाज और राजनीतिक परिस्थितियाँ, लेखक का निजी व्यक्तित्व।

हिन्दी साहित्य की पूरी विकास यात्रा इस बात का प्रमाण है कि उसमें कहीं भी समाज के अन्तर्बाह्य रूप का प्रतिबिम्बात्मक चित्रण नहीं हुआ है। अतः 'साहित्य समाज का दर्पण है', कथन समीचीन प्रतीत होता है। किसी भी युग के साहित्य से इस तरह की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती है कि वह अपने समाज का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत कर सके। साहित्यकार के लिये समाज साधन है, साध्य नहीं, इस साधन का प्रयोग कौन रचनाकार किस रूप में करता है, यह उसकी अभिरूचि, उद्देश्य एवं रचनाधर्मिता पर निर्भर करता है, जिसके लिये वह स्वतंत्र है।

डॉ0 शेर सिंह बिष्ट कहते हैं कि अद्वैतवाद के पुनर्मूल्यांकन में भी पारम्परिक मान्यताओं का खण्डन है। मध्यकालीन सम्पूर्ण भक्ति साहित्य को भी एक ही तुला पर नहीं तोला जा सकता। वे कहते हैं कि ईश्वर के सगुण अथवा निर्गुण पर आधारित भक्ति काव्य मात्र है। वस्तुतः वह दो अलग–अलग जीवन दृष्टियों पर आधारित काव्य है। डॉ0 बिष्ट कहते हैं कि अवैदिक अथवा नास्तिक धर्म के विरोध में वैदिक धर्म की रक्षा के लिये शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त की स्थापना की। अलौकिक प्रतिभाशाली शंकराचार्य ने भारतीय दर्शन को एक नई दिशा प्रदान की। उनका यह भी कहना है कि ''माया विशिष्ट ब्रह्म ही 'ईश्वर' है और वही जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है। जिस प्रकार एक ही मकड़ी, जालरूप कार्य के प्रति स्वयं ही निमित्त एवं उपादान कारण है अथवा ऐन्द्रजालिक जिस प्रकार अपनी माया शक्ति के द्वारा विचित्र सृष्टि के लिये निमित्त एवं उपादान कारण है। अतः ब्रह्म एक ऐन्द्रजालिक की तरह है। ब्रह्म और जगत में समुद्र और उसकी लहरों की तरह अभेद होते हुए भी व्यावहारिक भेद है।'' यदि ब्रह्म में अज्ञान के अस्तित्व को स्वीकारा जाये तो ब्रह्म के अद्वैत रूप की रक्षा हो पायेगी, क्योंकि तब ब्रह्म अज्ञानग्रस्त हो जायेगा।

डॉ0 शेर सिंह बिष्ट लिखते हैं कि भक्ति के आलम्बन के माध्यम से दो भिन्न–भिन्न दृष्टियाँ भी हैं। इस बात को भक्तिकालीन काव्य के आदर्श एवं यथार्थ निबन्ध में तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया गया है– आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल। आदिकाल का मुख्य धारा का साहित्य दरबारी साहित्य रहा है, जो प्रायः चारण कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया। राजनीतिक दृष्टि से तब भारत पराधीन नहीं था। सभी गणराज्य स्वयं में स्वतंत्र थे। मुख्यधारा के इतर साहित्य धार्मिक साहित्य है जो सिद्ध–नाथ पंथियों तथा जैन मुनियों द्वारा अपने–अपने पंथ के धार्मिक प्रचार के लिए लिखा गया। आदिकाल के काव्य का एक केन्द्र राजदरबार था तो दूसरा धार्मिक मठ–मंदिर। विषय–वस्तु की दृष्टि से मुख्यधारा के साहित्य का वण्य–विषय राजा–रजवाड़ों का अतिशयोक्ति प्रशस्तिगान, युद्ध–वर्णन, नायक–नायिकाओं का उद्गम वासनामय प्रेम–निरूपण था। इस कारण मुख्यधारा के साहित्य में श्रृंगार, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, करुण आदि रसों का होना स्वाभाविक था।[6]

छायावाद के सन्दर्भ में डॉ0 शेर सिंह बिष्ट ने नयी दृष्टि से मौलिक चिन्तन किया है। रीतिवाद तथा छायावाद के अन्तर्विरोध मतवैभिन्न आदि का नये सन्दर्भ में मूल्यांकन एवं विश्लेषण किया है। इस युग में गद्य का पर्याप्त–प्रसार हुआ। इस कारण यह 'गद्य–युग' भी कहलाया। आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य की दो प्रमुख विधाओं–गद्य एवं पद्य में समानान्तर रूप से प्रचुर मात्रा में साहित्य सृजन होने लगा। इससे पूर्व आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक केवल पद्य में ही साहित्य सृजन हो

रहा था। इस युग में गद्य ने प्रमुख रूप से गति पकड़ी। विचित्र संयोग यह है कि भारतेन्दु युग से ही खड़ी बोली गद्य एवं पद्य साहित्य का प्रारम्भ हुआ। साहित्य में पद्य की रचना तो होती रही, लेकिन विभिन्न कारणों से गद्य को लोकप्रियता मिलती गयी। यद्यपि इससे पूर्व भी विचारों के आदान–प्रदान एवं आपसी बातचीत में गद्य का प्रयोग होता था, परन्तु साहित्य में गद्य का स्थान नहीं के बराबर था। आधुनिक काल में विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में साहित्य–सृजन होने लगा।

डॉ0 बिष्ट कहते हैं कि आचार्य शुक्ल ने छायावाद के दो अर्थ किये हैं– एक, रहस्यवाद के अर्थ में और दूसरा, काव्य शैली के अर्थ में। वे छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से भिन्न मानते हैं तथा रहस्यवाद को छायावाद का पर्यायवाची या उसी में अर्न्तभुक्त। उनकी दृष्टि में प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत कथन छायावाद है। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावाद में मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता स्वीकार की है। उनकी दृष्टि में छायावादी कविता बाह्य ऐन्द्रियबोध तथा चेतन मन की सीमाओं को पार कर अचेतन के रहस्यलोक में पहुँचती है और जाने–अनजाने उसका मर्मोद्घाटन करती है। डॉ0 बिष्ट ने छायावाद की परिभाषा देते हुए लिखा है ''जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद नाम से अभिहित किया गया। रीतिकालीन प्रचलित परम्परा से जिनमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी, इस ढंग से अभिव्यक्ति हुई। ये नवीन भाव आन्तरिक स्पर्श से पुलकित थे। ...उनके लिये नवीन शैली, नया पद–विन्यास आवश्यक था।''[7]

इस प्रकार डॉ0 शेर सिंह बिष्ट समकालीन हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में नयी दृष्टि से साहित्य के बदलते सन्दर्भों में उसकी उपादेयता तथा साहित्य मूलबोध आदि पर विचार करते हुये आधुनिक हिन्दी साहित्य के समग्र मूल्यांकन में उनकी प्रसांगिकता को रेखांकित किया गया है। वे कहते हैं कि समीक्षा की एक स्पष्ट दृष्टि होनी चाहिए।

सन्दर्भः–

1. कालिका प्रसाद, राजबल्लभ सहाय, मुकुंदीलाल श्रीवास्तव– पृष्ट सं0 1198
2. समीक्षा की कसौटी